

## “भारतीय संस्कृति के चार अध्याय” में वर्णित जाति प्रथा का स्वरूप

### सारांश

भारतीय संस्कृति का रूप सामयिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। इस संस्कृति के विकास पर एक ओर आर्यों की बहुत ही गहरी छाप है और दूसरी ओर उत्तर पश्चिम एवं पश्चिम की संस्कृति का प्रभाव है। अपने विकास की प्रत्येक अवस्था में भारतीय संस्कृति ने समन्वयन एवं आत्मसात की अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। इन गुणों के कारण संस्कृति जीवित एवं गतिशील बनी रही। भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की प्रक्रिया में आर्य सीथियन, हूण आदि लोगों का भारत में आगमन एवं संविलयन सम्मिलित रहा जिसने जाति के रूप में अनेक रीति रिवाजों को प्रचलित किया जिन्हें बाहरी व्यक्ति समझ नहीं पाते थे। जाति के असंख्य एवं विचित्र स्वरूपों एवं रीतियों के विषय में अन्य दूसरे देश के लोग नहीं जानते। अस्पृश्यता, खानपान एवं विवाह संबंधी प्रतिबंध के विषय में हमारी दृष्टि संकुचित हो गयी। जिसमें यह संस्कृति जड़ होती गई एवं गतिशीलता में कमी आयी। भारत के इतिहास में दो परस्पर विरोधी एवं प्रतिद्वन्दी शक्तियों की प्रभावशीलता देखते हैं। एक वह जो बाहरी तत्वों से समन्वयन एवं सामंजस्य पैदा करती है तो दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है। रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित “भारतीय संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक में जातिप्रथा की उत्पत्ति एवं उसके संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक पक्ष का उल्लेख उसकी मौलिकता, कमजोरी एवं यथार्थ स्थिति के साथ किया है। विचारों एवं सिद्धांतों में अधिक से अधिक उदार एवं सहिष्णु होने का दावा करने के साथ-साथ सामाजिक आचार में संकीर्णता के होने की स्थिति का उल्लेख भारतीय समाज को सही अर्थों में समझने में सहायक होता है।

**मुख्य शब्द** : संविलयन, गतिशीलता, सहिष्णुता।

**प्रस्तावना**

“जाति प्रथा” भारतीय सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्था का मूल आधार के साथ-साथ सांस्कृतिक विशेषताओं में खण्डात्मक व्यवस्था के समन्वय का प्रतिरूप भी रही है। “भारतीय संस्कृति के चार अध्याय” पुस्तक में लेखक ने भारतीय संस्कृति की चार बड़ी क्रांतियों का उल्लेख किया है जिसके इतिहास में प्रथम क्रांति में आर्य एवं आर्यतर प्रजातियों के मिश्रण से निर्मित सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख है द्वितीय क्रांति में जैन एवं बौद्ध धर्म के धार्मिक संस्कृति का विद्रोह का उल्लेख है तृतीय क्रांति में इस्लाम का आगमन एवं हिन्दू धर्म के साथ संपर्क व प्रभाव तथा चतुर्थ क्रांति में भारत में अंग्रेजों के आगमन व प्रभाव का वर्णन सम्मिलित है। यह चारों काल चार अध्याय के रूप में भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण परिचय कराते हैं। जनसाधारण के समझने के उद्देश्य से लिखी गयी यह रचना भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप का बोध कराती है। भारतीय संस्कृति क्या है ? उसका विकास कैसे हुआ ? आदि प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया गया है।

‘रामधारी सिंह दिनकर’ ने भारतीय संस्कृति के प्रथम क्रांति में भारतीय समाज का जो समन्वित रूप प्रस्तुत किया है उसका बोध वर्तमान समाज में प्रचलित जाति प्रथा के विकृत स्वरूप में सुधार के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय संस्कृति के चार अध्याय में से प्रथम क्रांति के अन्तर्गत वर्णित आर्य एवं आर्यतर संस्कृतियों का मिलन में जाति प्रथा की उत्पत्ति समन्वय, विकास एवं परिवर्तन का स्वरूप उल्लेखनीय है भारतीय साहित्य में जाति शब्द से पहले वर्ण शब्द का उल्लेख मिलता है। धर्म शास्त्रों में जाति एवं वर्ण शब्द समानार्थिक रूप में लिया जाता है जिसका आधार बीज क्षेत्र अर्थात् जन्म रहा है वर्ण व्यवस्था जन्म एवं कर्म दोनों आधार पर वर्णित है इसके अतिरिक्त वर्ण का अर्थ रंग, स्वभाव एवं वरण करने अर्थात् चयन करना के अर्थ

**सुषमा पेंडारकर**  
प्राध्यापक,  
समाजशास्त्र विभाग,  
शासकीय महाविद्यालय,  
बरगी,जबलपुर

में भी प्रचलित रहा। वर्ण का अर्थ रंग के आधार पर कम वर्णित है। इस संदर्भ में डॉ अम्बेडकर ने अपना मत स्पष्ट किया 'वेदों से यह प्रमाणित नहीं होता कि आर्यों का रंग दासों के रंग से भिन्न था। वर्ण का निर्धारण पहले व्यवसाय, स्वभाव व संस्कृति के आधार पर ही था बाद में जातिवाद के प्रकट होने पर वर्ण का आधार भी जन्म हो गया।'<sup>1</sup>

ऋग्वेदी साहित्य में तीन वर्णों का उल्लेख मिलता है चौथा वर्ण शूद्र का वर्णन नहीं है अर्थात् आर्य समाज में अनेक लोग ऐसे थे जिन्हें कोई नाम नहीं दिया गया था अर्थात् शूद्र भी किसी न किसी प्रकार के द्विज ही थे जिनका स्थान क्षत्रियों के समान अथवा कम था। अपने आरम्भिक अवस्था में वर्ण व्यवस्था जटिल नहीं थी एक वर्ण से दूसरे वर्ण में आना जाना सुगम था किन्तु मनुस्मृति काल में जाति व्यवसाय के साथ अटूट रूप से सम्बन्धित हो गयी यानि प्रत्येक जाति को हमेशा के लिए किसी विशेष व्यवसाय के साथ जोड़ने की प्रथा वैदिक युग के बाद प्रचलित हुई। द्विज वर्णों से संबंधित तीनों ही जातियों का परिचय उनके व्यवसाय के आधार पर होने लगा और इन तीनों ही जातियों ने शिल्प और कला कौशल के व्यवसाय को हीन मानकर शूद्रों के योग्य मान लिया। इसकी प्रभावशीलता को लेखक ने बड़े ही सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "जो वर्ग सुसंस्कृत थे, जिनकी बुद्धि का भरसक विकास हुआ था, वे साधारणतः औद्योगिक कलाओं से दूर ही रहे। इस बात का भारतीयों के बौद्धिक और आर्थिक विकास की दृष्टि से विपरीत और अनिष्टकारी परिणाम हुआ।"<sup>2</sup>

जाति प्रथा के उत्पत्ति के व्यवसाय आधारित वर्णन के पश्चात् अन्तर्जातीय विवाह की मान्यताओं का उल्लेख है। द्विज जातियों के अलावा चौथी जाति शूद्र का जन्म अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न संतति के रूप में माना गया जिन्हें वर्णसंकर कहा गया। तैत्तरीय संहिता के पूर्व शूद्रों को यज्ञ एवं वैदिक संस्कारों का अधिकार था किन्तु इसके पश्चात् उन्हें उपनयन संस्कार से भी वंचित किया गया एवं उनका कार्य द्विज वर्णों की सेवा करना निश्चित हुआ दास के रूप में उनका शोषण भी हुआ किन्तु शूद्रों को यह अधिकार था कि वे वाणिज्यिक, पशुपालन एवं शिल्पोपार्जित व्यवसाय की क्षमता के अभाव में सेवा कार्य पर निर्भर रहें।

महाभारत काल के शांति पर्व में यह उल्लेख है कि संन्यास को छोड़कर शूद्र अन्य तीन आश्रमों में विधिवत् जीवन यापन कर सकते हैं। शूद्रों के आविर्भाव से वैदिक समाज चार वर्णों का माना जाने लगा। यह चार्तुवर्ण्य-व्यवस्था निन्दित नहीं थी किन्तु इनसे जन्मी जाति व्यवस्था से ऊँच-नीच का अन्तर ज्यादा बढ़ गया, मनुष्य केवल शूद्र ही नहीं बल्कि अन्त्यज व अस्पृश्य भी माना जाने लगा और जाति प्रथा का यह स्वरूप हिन्दू समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप बन गया। हिन्दू समाज में जाति आधारित धार्मिक व्यवस्था अपने विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो देती है किन्तु आचरण में स्वतंत्रता पर प्रतिबंध होता है। आज भी बुद्धिमान एवं शिक्षित व्यक्ति भी विचारों से व वाणी से जाति प्रथा की

निंदा करता है किन्तु कर्म से उसकी अवहेलना नहीं करता। अपने जाति से बाहर विवाह करने के लिए अधिक साहस की आवश्यकता होती है। आज भी समाज में अन्य जाति में विवाह करना गम्भीर अपराध माना जाता है जिसकी सजा जाति पंचायत द्वारा मृत्यु दंड के रूप में होती है। खाप पंचायत इसका उदाहरण है।

आज जाति का जो स्वरूप है वह पहले नहीं था फिर भी यह कहा जा सकता है कि जाति का आधार केवल पेशा या व्यवसाय नहीं था बल्कि उनके पास सभ्यता एवं संस्कृति थी जो अनेक स्तरों में थी। ऊँची जाति व निम्न जाति की संस्कृति अनेक स्तरों में विभाजित होती गयी। एक ही जाति अनेक गोत्रों में ऊँच नीच के संस्तरण में विभाजित होते गयी। अस्पृश्यों में भी परस्पर कोई कम व अधिक अछूत समझते रहे। इस प्रकार समाज में व्याप्त संस्कृतियों के ऊँचे नीचे स्तरों पर जातियों का विभाजन देखा जाने लगा। विभिन्न सांस्कृतिक धरातल पर जातियों की रचना आर्यों के आगमन से हुई। आर्यों का सम्पर्क भारत की द्रविड प्रजाति से हुआ एवं विभिन्न जातियाँ अस्तित्व में आयीं एवं एक व्यवस्था में बंध गयीं। आर्य विजित जाति के रूप में अपने प्रभावों को सर्वोच्च साबित करते रहे एवं जाति प्रथा की निरंतरता को बनाए रखने के लिए उनका उद्देश्य यह था कि इन सभी जातियों के लोगों को आर्य सभ्यता में रंगें और जो उनकी सभ्यता के अनुरूप हो जाता था समाज में उसकी उच्च स्थिति हो जाती थी। यह स्थिति आज भी समाज में दृष्टिगत है। कोई निम्न जाति समूह का व्यक्ति अपने से उच्च जाति जो द्विज वर्ण समूह से संबंधित होती है के अनुरूप अपने व्यवहार प्रतिमानों को ढालने का प्रयास करती है एवं उनके समरूप होने का दावा प्रस्तुत करती है। इस परिवर्तन को प्रो.निवास ने संस्कृतिकरण का नाम दिया है।<sup>3</sup>

जाति प्रथा का मुख्य उद्देश्य भारत में आने वाली हर एक जाति को भारतीय संस्कृति में सम्मिलित कर लेना था। इस देश में यह समस्या नहीं थी कि नवागन्तुक जाति (मंगोल, हूण, यूनानी) आदि को समाज में कहाँ स्थापित किया जाए? प्रत्येक को उनकी वैयक्तिक क्षमता एवं पारम्परिक संस्कारों के आधार पर स्थान मिल जाता था। भारत में सम्मिलित अन्य समूहों ने जाति प्रथा को स्वीकार कर लिया जिससे आर्य, द्रविड, औष्टिक, नीग्रो तथा सभी मंगोलों के लोग एक समाज के सदस्य हो गए जिसे हिन्दू समाज कहा गया किन्तु आर्यों ने अपनी संस्कृति को अन्य जातियों पर आरोपित नहीं किया बल्कि उनसे भी प्रभावित हुए जिससे रीतिरिवाज, धर्म, कथाएँ सब एक हो गए।

आर्य एवं द्रविड जातियों में सांस्कृतिक मिश्रण का स्वरूप धार्मिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अलग-अलग रूप में प्रचलित रहा। आर्यों की बातें पोथी एवं पुराणों तक सिमट कर रह गयी एवं विशाल जनसमुदाय ने द्रविड समाज के प्रचलन को अपनाया। हिन्दू संस्कृति का आज जो स्वरूप प्रचलित है वह ऋग्वेद काल में नहीं मिलता। अनेक रीतिरिवाज, अनुष्ठान प्रथाएँ आदि अधिक से अधिक उपादान आर्यतर संस्कृतियों से आए हैं अर्थात् आर्य

संस्कृति की अधिकांश बीजों का अविर्भाव व विकास द्रविड संस्कृति के सम्पर्क में आकर हुआ है।

जाति प्रथा में सन्निहित अनेक अधिक मान्यताएँ जो धर्म से संबंधित है उनका उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता। आर्यों में प्रकृति पूजा की प्रधानता थी और वायु, अग्नि, इन्द्र, सोम उनके आराध्य व प्रधान देवता रहे किन्तु आर्यतर के प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु व शिव होते गए एवं इनके नेतृत्व में 33 करोड़ देवी देवता जुट गए। साथ ही सैकड़ों व्रत एवं उपवास का उल्लेख भी ऋग्वेद काल में नहीं मिलता। पुराणकाल में अनेक कथाएँ, कहानियाँ एवं दन्त कथाएँ प्रचलित होकर आर्यों के साहित्य में समाविष्ट हो गयी। आर्य एवं आर्यतर (द्रविड) जातियों का समन्वय का कारण एक समाज के सदस्य होने पर लोगों के रीति रिवाजों का आपस में मिलना है। आर्य विजेता संस्कृति के रूप में अपनी संस्कृति का प्रचार प्रसार करना चाहते थे किन्तु अन्य सांस्कृतिक विरासत को तोड़ना भी नहीं चाहते थे और यह संभव भी नहीं था क्योंकि आर्यों एवं द्रविडों में सांस्कृतिक संघर्ष कम होने पर वे एकाकार हो गए। द्रविड स्त्रियाँ आर्यों के परिवार की व आर्य स्त्रियाँ द्रविडों के परिवार का हिस्सा बन गयी जो अपने साथ पैतृक देवता, रीति रिवाज एवं प्रथाएँ साथ लायीं। जिससे उनमें भिन्नता घटने लगी एवं एकता विकसित हुई। यह संबंध इतने प्रगाढ़ हो गए कि आर्य एवं द्रविड एकाकार हो गए आर्य अधिक मात्रा में द्रविड एवं द्रविड अधिक मात्रा में आर्य होने लगे और इन दोनों संस्कृतियों ने मिलकर उस समाज का निर्माण किया जिसे हिन्दू समाज कहा जाता है। लेखक ने हिन्दू नाम को एकता का प्रतीक बताया है क्योंकि विदेशियों ने जो हिन्दू नाम दिया वह एकता का द्योतक है आज हम आर्य व द्रविड नहीं बल्कि हिन्दू नाम से विख्यात हैं।

जाति प्रथा में सामाजिक समन्वय एवं एकता का वर्णित स्वरूप वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिक बोध गम्य है। आज समाज जाति के आधार पर अधिक विभाजित हो रहा है, जातिगत दूरियों के नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं जो जाति के अखंडित स्वरूप को समाप्त कर रहे हैं। “जातियाँ जब अगति की अवस्था में रहती हैं तब उनकी शक्ति दिनों दिन छीजती जाती है, उनकी कमजोरियाँ बढ़ती जाती हैं परिणाम यह होता है कि उनकी रचनात्मक कलाओं और प्रवृत्तियों का क्षय होता जाता है”

इस पुस्तक के प्राक्कथन में पं जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि “भारत में बसने वाली कोई भी जाति यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन एवं विचारों पर उसी का अधिकार है। भारत आज जो कुछ है, उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है। यदि हम इस बुनियादी बात को नहीं समझ पाते तो हम भारत को भी समझने में असमर्थ रहे हैं और यदि भारत को हम नहीं समझ सके तो हमारे भाव, विचार और काम सबके सब अधूरे रह जाएंगे और हम देश की ऐसी कोई सेवा नहीं कर सकेंगे जो ठोस ओर प्रभाव पूर्ण हो।”

समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में जाति की स्थापित विशेषताओं में परिवर्तन बांछनीय है किन्तु इनके प्रयासों ने जाति को नए रूप में प्रस्तुत किया जो पहले की अपेक्षा अधिक चिंतनीय है। जातिगत स्वतंत्रताओं ने निश्चय की वैयक्तिक एवं सामूहिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है किन्तु राजनीतिक हथियार के रूप में उसका प्रयोग किया जाना अनेक दुष्परिणामों को जन्म दे रहा है। इस संदर्भ में भारतीय संस्कृति के चार अध्याय के रचनाकार श्री रामधारी सिंह दिनकर ने जातिगत सामाजिक समन्वय एवं एकता के स्वरूप को प्रस्तुत कर समाज के विकास के आयामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

### उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख में लेखक द्वारा रचित पुस्तक “भारतीय संस्कृति के चार अध्याय” में वर्णित वर्ण एवं जाति व्यवस्था के द्वारा समकालिक स्वरूपों को सामाजिक सहयोग से समझकर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के साथ तुलना करना प्रमुख उद्देश्य रहा है। भारतीय संस्कृति का प्रथागत स्वरूप में व्याप्त बुराइयों कैसे जन्मी एवं कैसे उनकी विकृतियाँ बढ़ती गयीं आदि संदर्भों को समझकर उसके कारणों को ढूँढना जो वर्तमान में जड़ें मजबूत कर रहे हैं। लेखक मूल रूप से इतिहासकार हैं इन्होंने इस पुस्तक में वेदों में वर्णित संदर्भों को भी शामिल किया है। इतने गूढ़ अध्ययन को साहित्य के अलावा अन्य विषयों के साथ संलग्न करके समझना प्रमुख उद्देश्य रहा।

### निष्कर्ष

साहित्य ने समाज की व्यवस्था के स्वरूपों को शब्दों में उकेरा है। लोगों में व्याप्त भ्रांतियों को समाप्त कर नए दृष्टिकोणों को विकसित करने का कार्य किया है। लगभग 70 वर्ष पूर्व लिखित रचना में वर्णित जाति व्यवस्था की उत्पत्ति, मिश्रण एवं एकता के स्वरूप ने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त जातिगत विकृतियों के प्रति यह सोच विकसित करने के लिए बाध्य किया कि हम वास्तव में अपनी संस्कृति को विकसित कर रहे हैं या विकृत कर रहे हैं। राजनीतिक प्रलोभनों ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत दूरियों को कम करने के बजाय उसे बढ़ाया है।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर—भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण 1955
2. रामधारी सिंह दिनकर—भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण – पृष्ठ-03
3. रामधारी सिंह दिनकर—भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण – पृष्ठ-04

### पाद टिप्पणी

1. भारतीय संस्कृति के चार अध्याय – पृष्ठ क्रमांक 43
2. भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ क्रमांक 46
3. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन प्रो.एम.एस.श्री निवास पृष्ठ क्रमांक